लेख

भारतीय मुस्लिम महिलाएं
समीक्षा व समाधान

सीमा काज़ी

आज़ादी के छः दशकों के बाद भी भारतीय मुस्लिम महिलाएं समाज की सर्वाधिक अदृश्य, कम शिक्षित, आर्थिक पिछड़ेपन से ग्रस्त व राजनैतिक हाशिए पर खड़ी हैं। मुस्लिम समुदाय की महिलाओं को चुनौती देने वाले मुद्दे तथा भारतीय नागरिक की हैसियत से उनके अधिकारों के हनन दोनों ही पर गौर करना बेहद ज़रूरी हो गया है।

भारत की मुस्लिम महिलाएं एक समरूपी, सजातीय वर्ग नहीं हैं। आम धारणा है कि इन महिलाओं का सामाजिक दर्जा इस्लाम की कुछ निजी व अपरिवर्तनीय विशेषताओं का मोहताज है या उनका कानूनी दर्जा केवल *मुस्लिम कानून* पर आधारित है। इस गलतफहमी के नतीजतन मुस्लिम महिलाओं को भारतीय समाज के एक 'अलग' वर्ग की तरह देखा जाता है जो उनकी सांस्कृतिक रूढ़िबद्धता को पुनर्स्थापित करके समकालीन सच्चाइयों को धुंधला कर देती है।

मुख्यधारा ऐतिहासिक वृत्तान्त, जिसका सरोकार मुगल साम्राज्य के उदय व पतन से है भी मुस्लिम महिलाओं को नज़रअंदाज़ कर देता है। इस दौर में हालांकि मुस्लिम महिलाएं सार्वजनिक जीवन से ज़्यादातर गायब थीं, पर अनके महिलाएं कवियत्री, लेखिका यहां तक कि सुल्तान, रज़िया सुल्तान के रूप में विख्यात थीं। सदी के पलटने के साथ-साथ मुस्लिम समुदाय ने स्त्री शिक्षा की बात उठाई और अनेक महिलाओं ने स्त्री शिक्षा में अपना योगदान किया। बीसवीं सदी के शुरूआती दशकों में शैक्षिक संस्थानों में मुस्लिम लड़कियों की भागीदारी राष्ट्रीय अनुपात के आंकड़ों से कहीं ज़्यादा थी। मुस्लिम महिलाओं ने कानूनी भेदभाव, औरतों को अलग-थलग रखने पर अभियान चलाए व महिला आंदोलन में सक्रिय भूमिका अदा की। 1947 के विभाजन के दौरान व इसके बाद हुई सामाजिक राजनैतिक व आर्थिक उथल-पुथल ने इस धारा का रूख मोड़ दिया। एक राजनैतिक मौजूदगी के अभाव ने मुस्लिम महिलाओं को समुदाय के अंदर व बतौर भारतीय नागरिक अपने सरोकार बुलंद करने से वंचित कर दिया।

1980-90 के दौर में साम्प्रदायिक राजनीति की उत्पत्ति इसमें धर्म व राजनीति का गहरा संबंध दिखाई पड़ा। इसमें अल्पसंख्यकों के सामुदायिक हितों को लैंगिक हितों से अधिक प्रोत्साहन दिया गया; साथ ही मुस्लिम महिलाओं के अनुभवों व ख्वाहिशों का मुस्लिम पुरुषों द्वारा अपनाव ने महिलाओं से उनके दर्जे के लिए मोल-तोल की संभावना भी छीन ली। हिन्दू कट्टर पूर्वग्रह व मुस्लिम रूढ़िवाद के गठबंधन ने मुस्लिम महिलाओं को उनके सरोकार उठाने की कोशिशों में मुश्किलें पैदा कर दीं जैसा कि *मुस्लिम महिला कानून 1986* के सूत्रबद्ध होने के समय स्पष्ट देखा गया था। इस कानून में महिलाओं के अधिकारों को सामुदायिक मांगों से निचले स्तर ही रखा गया था। हिन्दू कट्टरपंथियों ने इस मुद्दे का इस्तेमाल मुस्लिम विरोधी पूर्वग्रह को भड़काने के लिए किया।

हिन्दू कट्टरवाद की राजनैतिक अग्रता, 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस व 2002 के गुजरात नरसंहार ने धर्म निरपेक्ष कानून को दुर्बल बनाकर भारतीय राज्य की उसके मुसलमान नागरिकों के मानव अधिकारों की सुरक्षा करने की प्रतिबद्धता पर गंभीर सवाल उठा दिये। अयोध्या कांड

व गुजरात कत्लेआम के बाद साम्प्रदायिक हिंसा ने राज्य व उसके पक्षों की मुस्लिम समुदायों व महिलाओं के प्रति घोर मानव अधिकार उल्लंघन में मिली-भगत को उजागर कर दिया। ये सब काम धार्मिक निष्पक्षता, मानव अधिकार सुरक्षा, सामाजिक न्याय कार्यान्वयन तथा सभी भारतीय नागरिकों की समानता के संवैधानिक आदर्शो तथा अंतर्राष्ट्रीय मानव अधिकार कानून के सिद्धान्तों का भी उल्लंघन था। सैकड़ों रिपोर्टो में इस मानवाधिकार उल्लंघनों का दस्तावेज़ीकरण किया है हालांकि मुकदमों की सुनवाई अभी बाकी है।

आधुनिक भारत में मुस्लिम समुदाय का सामाजिक आर्थिक दर्जा, उनकी राजनैतिक भागीदारी की दर व कानूनी सुधार की आवश्यकता चिन्ता और तवज्जो की मांग करते हैं। इस बिन्दू को और बढ़ा-चढ़ाकर कहने की आवश्यकता नहीं है जबकि 1983 की सरकार द्वारा गठित गोपाल सिंह समिति द्वारा मुसलमानों को भारत का "पिछड़ा समुदाय" घोषित किया गया था। इस "पिछड़ेपन" का केन्द्र बिंदु है मुस्लिम समाज विशेषतः महिलाओं का सामाजिक आर्थिक दर्जा। 1981 में 39 ज़िलों, जहां 20 से 95 प्रतिशत मुसलमान जनसंख्या बसती थी, में किए शोध अध्ययन में मुस्लिम महिलाओं की साक्षरता दर 21.91 प्रतिशत पाई गई थी जो राष्ट्रीय अनुपात से 24.82 प्रतिशत कम थी। अखिल भारतीय व केंद्रीय सेवाओं में मुसलमानों की भागीदारी बहुत निम्न थी।

सचर कमीशन रिपोर्ट 2007 ने इस नियमित और तकलीफदेह चलन को खासतौर पर उजागर किया है। इस खराब सामाजिक-आर्थिक दर्जे की तस्वीर के अंदर मुस्लिम महिलाओं के आंकड़े उन्हें सबसे निचले स्तर पर रखते हैं। मुस्लिम महिलाओं का यह निम्न दर्जा इस क्षेत्र में छानबीन की अत्यंत महत्वपूर्ण ज़रूरत को रेखांकित करके, मुस्लिम महिलाओं की बतौर भारतीय नागरिक की हैसियत, पूर्ण व समान भागीदारी सुनिश्चित करके, इस असमानता के प्रतिकार के लिए नीतियों के कार्यान्वयन के लिए राज्य व उसके पक्षों के सक्रिय हस्तक्षेप की मांग करती है। इसके अलावा यह भी महत्वपूर्ण है कि मुस्लिम पुरुष व स्त्रियां अपनी आर्थिक दुर्बलता व निम्न शैक्षिक व रोज़गार के स्तर के कारणों व समाधान को तलाशने के लिए आपस में विचार-विमर्श व आत्म-निरीक्षण करें। इसके अतिरिक्त मुस्लिम महिलाओं को मुस्लिम समुदाय के पितृसत्तात्मक ढांचों से निजात पाने के लिए बहस की ज़रूरत व एकजुटता हासिल करनी होगी।

कानूनी सुधार पर बहस, महिला व इस्लाम पर विचार-विमर्श के साथ जुड़ी है इसलिए मुस्लिम महिलाओं को महिला अधिकार व इस्लाम से जुड़ी बहसों में भागीदारी करनी होगी। भारतीय मुस्लिम महिलाओं के लिए बहुत महत्वपूर्ण है कि वे धार्मिक ज्ञान पर अपने हक़ पुनर्स्थापित करें, शरीयत पर विमर्श में शिरकत करके अपने ऐतिहासिक दरकिनारी व भेदभाव पूर्ण व्याख्याओं को चुनौती दें। इसी के साथ यह भी ज़रूरी है कि मुस्लिम महिलाएं (व पुरुष) देश के धर्मनिरपेक्ष व प्रगतिशील समूहों के साथ सहयोग संबंध बनाएं जिससे मुस्लिम समुदाय की समानता व भागीदारी-युक्त बेहतरी व महिलाओं के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य व सामाजिक अवसरों को हासिल करने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया जा सके।

सन 2009 के चुनावी परिणामों ने धर्म निरपेक्ष राजनीति व भागीदारी-युक्त बेहतरी का संकेत दिया है। बीजेपी व कांग्रेस सरकारों की पहचान की राजनीति की गिरफ्त से आज़ाद होकर देश के हाशियेदार मुस्लिम समुदाय ने इंसाफ़, समानता व भागीदारी-युक्त बेहतरी के लिए वोट डाले हैं। भारतीय राजनीति की दिशा में यह मूलभूत बदलाव मुस्लिम समुदाय व भारतीय राज्य के संबंधों में महत्वपूर्ण बदलाव लाएंगे। पहचान, परिवार व समुदाय केंद्रित मुस्लिम-पुरुष हितों की रक्षा से हटकर इस चुनावी फैसले ने मुसलमानों को देश का नागरिक मानते हुए उनके समक्ष खड़े सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों को तत्परता से संबोधित करने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया है। यकीनन, सामाजिक-आर्थिक विकास व भागीदारी-युक्त विकास सुनिश्चित करके ही भारतीय राज्य मुसलमानों खासकर मुसलमान महिलाओं पर रूढ़िवादी व विभाज्य पहचान की राजनीति द्वारा किए नुक्सान की भरपाई करने की दिशा में कदम बढ़ा सकता है।